

## अध्याय : षष्ठ

### निष्कर्ष

जे. कृष्णमूर्ति जी के शिक्षा—दर्शन की वर्तमान समय में उपादेयता

आज शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी तीनों अपने-अपने स्थानों से हट गये हैं। फिर शिक्षालय की दशा के विषय में क्या पूछना शिक्षा में अन्तर्दृष्टि प्रत्यक्ष— बोध और सर्जन शीलता के स्थान पर वाह्य आदेश अनुकरण और प्रतिभा को हनन करने वाले तत्वों का बोलबाला है। स्वावलम्बन, स्वानुभूति एवं स्वप्रतिभा—विकास के स्थान पर परावलम्बन संग्रहवृत्ति एवं सूत विद्या ;लनिंग वाई रोटद्ध का प्रचार अधिक है। वही शिक्षक ज्ञानी समझा जाता है जिसमें कुड़ा—करचरा अधिक है जिसने प्रतिभा का स्वयं हनन तो किया ही है पर दूसरे की प्रतिभा हनन करने का बड़ा उठा रखा है और इस कार्य में सतत् प्रत्यनशील है। शिक्षार्थी भ्रान्त, हताश, कुंठित, निराश्रित एवं सत्य निष्ठा से रहित है। सजकता और अवधान तथा स्नेह के समान पर उसमें प्रभाव, चंचलता और विद्वेष जैसे दुर्गुण पनप रहे हैं। शिक्षालय ऐसे स्थान बन गये हैं, जहाँ कोई गुरु, कुलपति या अधिष्ठाता मार्गदर्शन और व्यक्ति—निष्ठा को उभारने का सहारा लेकर येन—केन—प्रकरेण अपना प्रभुत्व बनाया रखना चाहता है। वे सत्यानुभूति, सत्यानवेषण, प्रज्ञा जागरण एवं सीखने के केन्द्र न होकर कट सत्य को आवृत करने, सर्जनशीलता की शक्ति से मुक्त प्रज्ञा को सुप्त करने एवं अन्तर्दृष्टि का सूझ के स्थान पर अनुकरणादि को बढ़ावा देने के केन्द्र मात्र रह गये हैं। वहाँ से कोई कार्य, कोई मनीषी, कोई युग दृष्टा नहीं निकल रहा हैं निकल रहे हैं तो ऐसे अफसर, ऐसे नौकरशाह जो अपनी हुकूमत चलाने और नौकरशाही को बढ़ावा देने में ही अपने को कृतार्थ समझ रहे हैं। रोजी रोटी दिलाने का मात्र एकलक्ष्य लेकर चलने वाली आज की शिक्षा लोगों को राजी—रोटी भी नहीं दिला पा रही है। शिक्षालय ऐसे कठधरे या पिजरे के समनला है, जहाँ छात्रों को अपनी प्रतिभा का हनन करके ऐसे तोते की रतह पाठों को रटाया जाता

है जैसे उनके पास अपनी कोई समझ नहीं है। संवेदनशीलता एवं प्रत्यक्ष बोध की ललक के अभाव में विद्यार्थी मात्र तर्कों की सहायता से सत्यान्वेष करना चाहता है, परन्तु यह कैसे संभव है? वेदान्त सूत्र का प्रथम सूत्र— अधातो ब्रह्म जिज्ञासा, उसी तरह शिक्षा का प्रथम सूत्र होना चाहिए प्रत्यक्ष बोधः।

परन्तु इस प्रत्यक्ष —बोध के लिये क्या सचमुच प्रयत्न हो रहा है कृष्णमूर्ति जी के प्रचनों, संवादों एवं ग्रन्थों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज परम्परा अपनी आत्मा खो चुकी है। जीवन की उपयोगी पुस्तक को पढ़ने के स्थान पर विद्यार्थी जीवन को आवृत्त करने वाले तत्वों की जानकारी में ही उलझा हुआ है। वर्ड्सवर्थ की तरह वह प्रकृति की गोद में रहकर वह अपनी प्रतिभा के विकास और प्रज्ञा के जागरण के लिए प्रयत्नशील नहीं है। वह सीखने की कला से अनभिज्ञ है। उसमें प्रेम का भाव नहीं है वह प्रतिस्पर्धा का लाभ से चल रहा है। उसे अपने सहयोगी मित्रों को पछाड़ने में विशेष अभिरुचि है। शिक्षा का एक मार्ग है, शिक्षार्थी सब उस मार्ग के पथिक है स्थिर सत्यान्वेषी विद्यार्थियों में आपस में प्रेम क्यों नहीं है गुरु शिष्य संबंध बिगड़ चुका है, क्योंकि दोनों में प्रेम का अभाव है। प्रेम स्वयं से एक संताप है, इसे नहीं समझा जा रहा है। प्रेम में त्याग की भावना जुटी है त्याग की भावना से ही भोग भी हो सकता है अन्यथा भोग में रोग—भय है और तरह—तरह की भय है। वही मनुष्य सुखी है जो कुछ नहीं है, जो कुछ संग्रह करना नहीं चाहता संग्रहकर्ता शिक्षक और शिक्षार्थी तथा संग्रहवृत्ति के प्रसारण केन्द्र शिक्षालय अशांत एवं दुख के केन्द्र न तो क्या रहेंगे? ऐसे माहौल में शोधकर्त्ता ने यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है कि कृष्णमूर्ति का शिक्षा—दर्शन ही वर्तमान संदर्भ में सबसे अधिक प्रसंगिक है। अपनी शैक्षिक विचारधारा द्वारा की कृष्णमूर्ति की एक ऐसी अमूल क्रांति लाना चाहते हैं, जिससे मानव का जीवन उदान्त बन सके। उसमें प्रेम, करुणा एवं संवेदनशीलता के गुणों का स्वाभाविक रूप से विकास हो।

एक बार भी हम प्रकृति से अपना सम्बन्ध बना लेते फिर आपस में प्रकृति के बंटवारे के लिए लड़ते—झगड़ते नहीं। जमीन का टुकड़ा आश्रम लेने का एक साधन है ऐसा समझकर तेरे—मेरे के भाव का हल परित्याग कर देते। आज हम इनसे के सौन्दर्य के प्रति संवेदनशील नहीं हैं, हम जीवन का स्पर्श खो बैठे हैं चूँकि हम प्रकृति से प्रेम नहीं करते इसलिये हम आपास में और अन्य प्राणियों से भी प्रेम करना नहीं जानते।

हमें पहले अपनी उपयोगिता वादी दृष्टि से मुक्ति लेनी होगी हम आपस में प्रेम करेंगे। मुक्ति के बिना मनुष्य मुरझा जाता है। मुक्ति होना ही क्रिया है, ऐसा नहीं होता कि मुक्त होने के लिए कुछ करना होता है कृष्णमूर्ति कहते हैं प्रेम करिये और घृणा समाप्त होती है। लेकिन प्रेम करने के लिए घृणा को नकारना उस सुख का भाग है जिसे विचार स्थापित करता है। इसलिए मुक्ति प्रेम और क्रिया का परस्पर सम्बन्ध है।

इसी मुक्ति और प्रेम और सर्जनशीलता क्रिया शक्ति को प्रकट करने में ही कृष्णमूर्ति जी सतत प्रयासरत रहे हैं।

अतः शिक्षा का यह मूलभूत कार्य है कि वह आपको यह खोजने में मदद करे कि आप सचमुच कौन सा कार्य प्रेम से करना चाहते हैं ताकि आप उसमें अपना सम्पूर्ण मन, सम्पूर्ण हृदय लगा सकें तभी आपमें उस मानवीय गरिमा का उदय होगा, तभी उदासीनता छिछली वृत्तियों का अन्त होगा। क्योंकि बालक किसी ज्ञान को अपने ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही ग्रहण करता है अतः बालक की ज्ञानेन्द्रियों के समुचित विकास पर ध्यान देना समीचीन होगा। बालक में अवलोकन की क्षमता का विकास होना चाहिए क्योंकि सर्वप्रथम वह अवलोकन के द्वारा स्थूल वस्तुओं को जानने का प्रयास करता है पुनः उसकी सुक्ष्मता में जाता है। अतः समग्र अवलोकन हेतु बालक को तैयार करने की आवश्यकता होती है। कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि जैसे—जैसे आय बड़े होते हैं, दुर्भाग्य से सुनने का, देखने का, अवबोध समाप्त हो जाता है क्योंकि आपकी चिताएं होती हैं आप और अधिक धन, बढ़िया कार, अधिक या कम सन्तान चाहते हैं। आप ईष्यालू महत्वाकांक्षी अभिमानी, लालची

एवं द्वेषपूर्ण हो जाते हैं इस प्रकार आप पृथ्वी के सौन्दर्य का बाधें खो देते हैं। परन्तु यदि आप विचार करना, निरीक्षण करना, सीखना आरम्भ करें—सीखना पुस्तकों से नहीं बल्कि विश्व में जो चारों तरफ हो रहा है उसे देखकर—तो आप एक ऐसे भिन्न प्रकार के मनुष्य के रूप में विकसित हो सकें जो सतर्क है, जिनमें स्नेह है, जो लोगों से प्रेम करते हैं। यदि आप इस प्रकार से रहे तो सभवतः आपको सच्चा धार्मिक जीवन प्राप्त हो सकता है। जे. कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि सिखने के लिए स्वतंत्रता और व्यवस्था दोनों की आवश्यकता होती है। व्यवस्था के बिना स्वतंत्रता का कोई अस्तित्व नहीं होता। वे दोनों साथ—साथ चलती हैं। स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि आपको मनमानी करने की छूट मिल गई है। स्वतंत्रता के लिए बालक की सम्यक बुद्धि की संवेदनशीलता की तथा अवबोध की आवश्यकता होती है। अतः आज वर्तमान समय में संवेदनशीलता तथा अवबोध की महती आवश्यकता है इस प्रकार की तैयारी इस प्रकार होनी चाहिए कि बालक में तत्परता, संवेदनशीलता, अवबोध, अवलोकन एवं प्रत्यक्षीकरण की क्षमता विद्यमान है। अध्यापकों के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जे. कृष्णमूर्ति का कहना है कि शिक्षा में शिक्षक के अनुकरण तथा सम्पर्क द्वारा बालक के व्यक्तित्व की कल्पना की गई है। प्रातः काल की प्रार्थना से लेकर रात्रि विश्राम तक बालक के समस्त क्रिया कलाप शिक्षकों के साथ ही होते हैं। जिनके सफल संचालन एवं नियंत्रण अध्यापक द्वारा सम्पादित किया जाता है। अतः अध्यापक का व्यक्तित्व विकसित होना अपेक्षित है। परिवार के पश्चात् शिक्षक ही बालक—बालिका और मस्तिष्क को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। अतः शिक्षक का स्वस्थ शरीर, उच्च नैतिक चरित्र, विकसित मन और मस्तिष्क तथा श्रेष्ठ सामाजिक गुण है। **शिक्षक का शब्दोच्चारण** में जे. कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि अगर शिक्षक का नैतिक चरित्र और आचरण आकर्षक नहीं होता तो उसका व्यक्तित्व विश्रुंयखलित होगा और उस अवस्था में पाठ्य विषय और उसके अध्ययन का कोई प्रभाव बच्चे, बालकों तथा किशोरों के मस्तिष्क पर नहीं पड़ेगा। यही नहीं उसका प्रभाव ही उल्टा होगा। अतः व्यक्तित्व के निर्माण में चरित्र और

आचारण का प्रमुख योग है। जिस व्यक्ति का चरित्र ठीक नहीं उसका व्यक्तित्व आकर्षक नहीं होता

रोम के प्रसिद्ध विचारक क्विंटीलियन अस्वस्थ क्रोध तथा शुष्क हृदय के व्यक्ति को अध्यापक बनने के पक्ष में नहीं थे। वे अपनी पुस्तक इंस्टीच्यूट्स ऑफ ऑरेटरी में शिक्षक की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए बतलाते हैं कि अध्यापक को सदैव प्रसन्नचित रहना चाहिए। उसे अपने चरित्र को सदैव प्रसन्नचित रहना चाहिए। उसे अपने चरित्र को सदैव उज्ज्वल रखना चाहिए और बच्चे की एक शुष्क हृदय वाले अध्यापक से उतनी ही दूर रखना चाहिए जितना की शुष्क मिट्टी को एक कोमल पौधे से, क्योंकि ऐसे अध्यापक का संसर्ग बच्चों को भी शुष्क बना देता है। उम्र के सन्दर्भ में जे. कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि शिक्षक में धैर्य निष्पक्षता सहयोगात्मक भाव प्रेम तथा सहानुभूति, प्रसन्नता, मिलन सरिता और शिष्ट मर्यादा पूर्वक व्यवहार, मधुर वाणी और शीलतना बोलचाल पर संयम, विनोद प्रियता और शिष्ट मर्यादा पूर्व व्यवहार, मधुरवाणी और शालीनता, बोलचाल पर संयम, विनोद प्रियता और मितभाषिता श्रम और कर्म के प्रति निष्ठा, उच्च विचार और सरल जीवन के प्रति आस्था, नियमितता, सन्न(ता, उदारता एवं नेतृत्व शक्ति आदि का समावेश होना चाहिए।

जे. कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि एक सही शिक्षक बनने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक पुस्तकों और प्रयोगशालाओं से अपने को निरंतर मुक्त करना रहे, उसे सदा इसकी सावधानी बरतनी चाहिए कि विद्यार्थी कहीं से उदाहरण, आदर्श, प्रमाण न बना लें। जब अध्यापक अपने विद्यार्थी के माध्यम से अपने को परिपुष्ट करने की अभिलाषा रखता है, जब विद्यार्थी की सफलता उसकी अपनी सफलता होती है तब उकसा शिक्षण आत्म सातत्य का, अपने अंह को ही बनाये रखने का एक बहाना होता है और उस आत्म बोध तथा स्वतंत्रता के लिए हानिकारक है सही अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह इन बाधाओं के प्रति जागरूक हो जिससे कि वह अपने विद्यार्थियों को केवल अपने ही

प्रभुत्व से नहीं बल्कि उनके अपने आत्म केन्द्रित प्रयासों से भी मुक्त कर सकें। अतः आज के वर्तमान युग में जे. कृष्णमूर्ति जी के विचारों की उपादियता है।

आपने भय के बारे कहते हैं कि भय ही है जो मन को पुष्पित होने से रोकता है भय वस्तुतः आज्ञापालन तथा अधिकार का सारतत्व है माता-पिता और सरकारें आज्ञा पालन चाहती हैं। पोथियों का सत्ताधिकार है शंकराचार्य तथा बु( का सत्ताधिकार है। आईसराइन का सत्ताधिकार है। अधिकांश व्यक्ति अनुगामी होते हैं वे किसी भी प्रवर्तक को सत्ताधिकारी में अथवा आप्त-प्रमाण्य में बदल देते हैं और प्रचार, प्रवाह साहित्य के द्वारा कोमल मस्तिष्क पर आज्ञाकारिता अनिवार्यता को छाप देते हैं। जब आप आज्ञा पालन करते हैं तो वास्तव में क्या होता है? आप सोचना बंद कर देते हैं। आप सोचते हैं कि सत्ताधिकारी सब कुछ जानते हैं वे इतने शक्तिमी लोग हैं, उनके पास तमाम धन है, कि वे आपको आपके मकान से बाहर निकाल सकते हैं और चूंकि वे 'कर्त्तव्य' 'प्रेम' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जिससे आप समर्पण कर देते हैं और किसी एक विचार के एक अनुकृति के उसके प्रभाव के दास बन जाते हैं। मस्तिष्क जब आज्ञाकारिता के किसी प्रारूप के अनुरूप हो रहा है तो वह ताजगी के योग्य नहीं रहता और न तो वह सरलता एवं स्पष्टता से सोच ही सकता है। यदि आप ज्ञान को सत्ताधिकार का ही केवल अनुसरण कर रहे हैं तो आप नहीं सीख रहे हैं और प्रदान कर रहे हैं और इस प्रकार मन को यान्त्रिक तथा सीखने के योग्य बना रहे हैं। सीख आप केवल तभी सकते हैं जब आपको ज्ञान नहीं है। सीखता तभी सम्भव होता है जब भय नहीं होता और जब सत्ताधिकार नहीं होता।

प्रश्न है कि बिना सत्ताधिकार के और इसलिये बिना भय के आप गणित और कोई दूसरा विषय कैसे सिखते हैं? प्रतियोगिता में तो अनिवार्यतः भय निहित है, चाहे वह प्रतियोगिता कक्षा में हो अथवा जीवन में। कुछ न होने का भय लक्ष्य पर पहुँच न पाने का भय, सफल न हो पाने का भय ही प्रतियोगिता की जड़ है। परन्तु जब भय है, सीखना समाप्त हो जाता है और इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भय को समाप्त करना, यह

देखना कि आप यान्त्रिक तो नहीं जा रहे हैं और उसके साथ ही आपको ज्ञान भी देना, शिक्षा का कार्य है। बिना यान्त्रिक हुए सीखना अर्थात् बिना भय के सीखना एक जटिल विषय है। उसमें समस्त प्रतियोगिता का विलय निहित है। प्रतियोगिता की इस प्रक्रिया में आप किसी प्रारूप के अनुरूप ही बनते हैं और क्रमशः अपने मस्तिष्क की युवावस्था को सुक्ष्मता को, ताजगी को नष्ट करते हैं। परन्तु आप ज्ञान को अस्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए क्या यह सम्भव है कि आप ज्ञान प्राप्त करें और फिर भय मुक्त रहें? क्या आप समझते हैं? क्या आपने अपने को कभी सीखते हुए देखा है कभी—कभी स्वयं अपना निरीक्षण कीजिये और अपने को सीखते हुए देखिये जब आप पड़ोसी से प्रतियोगिता नहीं कर रहें, तभी आप सर्वाधिक सीखते हैं और तभी आपका मन विलक्षण रूप से सजीव हो जाता है। इसलिये बिना सत्ताधिकार के सीखना अर्थात् मस्तिष्क अर्थात् मस्तिष्क को मंद और पथ—भ्रष्ट किये बिना ज्ञान प्राप्त करना और भय का विलय करना ही अध्यापक के लिये तथा आपके लिये विचारणीय विषय है। क्या आप इस समस्या को देखते हैं, सीखने के लिये कोई अनुरूपता, कोई सत्ताधिकार नहीं होना चाहिए और फिर भी आपको ज्ञान प्राप्त करना है। मस्तिष्क को बिना विरूपित किये इस सब का समायोजन करना ही समस्या है जिससे कि जब आप बड़े हों जब आप अपनी परीक्षाएं पास करें और विवाह करे तो आप जीवन का ताजगी से, बिना भय के सामना कर सकेंगे तब आप प्रत्येक समय जीवन के विषय में सीखते रहते हैं। नहीं तो फिर यही होता है कि किसी प्रारूप के अनुसार आप जीवन का अर्थ लगाते रहते हैं।

जीवन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण विचारणीय विषयों में से एक यह तथ्य है कि व्यक्ति सुरक्षा जाता है, वह विघटित हो जाता है। भय और पतन सम्बन्धित है जैसे—जैसे आप बड़े होते हैं, यदि आप की समस्या को जब वह उत्पन्न होती है परन्तु ही बिना उसे दूसरे दिन के लिये ले जाये हल नहीं करते तो पतन का तत्व आ जाता है वह किसी रोग की तरह होती है। वह एक घाव की तरह है जिसमें सड़न आ गई है, जो नाश कर रहा है। एक

अच्छी नौकरी न प्राप्त करने का, अपनी महत्वाकांक्षी की पूर्ति न होने का भय अपनी क्षमता को अपनी संवेदनशीलता को, आपकी बौद्धिक, शक्ति को नष्ट करता है। इसलिये भय की समस्या का समाधान तथा पतन का तत्व परस्पर सम्बन्धित है। आप किससे भयभीत है उसका पता लगाने का प्रयत्न करें और देखे कि क्या आप उस सम्बन्ध को समझ लेना उतना ही कठिन है जितना की अपने पड़ोसी और बच्चों के साथ सम्बन्ध को समझना। पर हमने उस दिशा में कभी सोचा भी नहीं। हम सामाजिक राजनीतिक गतिविधियों में बहुत व्यस्त है। यह स्पष्ट है कि ये गतिविधियाँ अपने आप से पलायन है और प्रकृति की अराधना करना भी अपने आप से पलायित होना है। हम प्रकृति का इस्तेमाल करते रहे हैं या तो पलायन के लिए या उपायोगितावादी उद्देश्यों के लिए। हम कभी भी रुककर पृथ्वी या पृथ्वी की चीजों का प्रयक्ष बोध कर उनसे प्रेम नहीं किया। समृद्धि (खेतों का हम कभी आनंद नहीं लेते। श्रमदान हमें अच्छा नहीं लगता। अपने हाथों से काम करने में हमें लज्जा लगती है। इसलिए हम प्रकृति के साथ अपने सम्बन्ध खो बैठे है।

प्रजा जागरण और अन्तर्दृष्टि को महत्व देने वाला विद्यार्थी ऐसा विधासाधक बने, जो स्वयं तो मुक्त और सृजनशील बने ही औरों को भी उसी तरह मुक्त सर्जनशील बनने की प्रेरणा दे। शिक्षक भी विद्यार्थी को समझने में उसकी मदद करें और उसे बेहतर और उदात्त जीवन की ओर मार्गदर्शित करें। मार्गदर्शन के लिए आवश्यक है कि छात्र की प्रतिभा को प्रतिबंधित करने वाले प्रीणाओं से उसे मुक्त करने का प्रयास किया जाये। पर छात्र को ऐसा न लगे कि उस पर दबाव डाला जा रहा है। शिक्षक का मात्र कार्य अपने को प्रतिबंधित करने वाले आन्तरिक एवं बाह्य प्रभाव को समझने में छात्र की सहायता करना।

शिक्षालय में कोई ऐसा गुरु कुलपति या नेता नहीं होना चाहिए। जो मार्गदर्शन करे, समझाने या अपना प्रभुत्व बनाये रखे,। यह प्राचीन आश्रमों या गुरुकुलों जैसा होना चाहिए जहाँ शिक्षा उस सत्य की अभिव्यक्ति रूपा है, जिसे गंभीर लोगों को स्वतःपाना चाहिए



इसमें व्यक्ति निष्ठा के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। शिक्षालय सीखने की कला जानने के स्थान है। यहाँ हम प्रश्न करने की कला, खोजने की कला प्रज्ञा जागरण की कला सीखते हैं। यह कला करुणा प्रेम के साथ आती है वैमनस्थ और प्रतिस्पर्धा से नहीं। यहाँ भ्रति, द्वंद्व, विनाशवाली दुनिया के बीच अखंडता और सत्य निष्ठा रहती है। यहाँ के लोगों में सजगता, अवधान और स्नेह के दर्शन होते हैं। शिक्षा सत्यान्वेषण है। सत्य मौन में होता है, निःशब्दता में होता है, निःशब्द होकर सुनने में ही इसका दर्शन होता है। सत्य को तर्क से, विचार से अनुकरण से जाना नहीं जा सत्य को तर्क से, विचार से अनुकरण से जाना नहीं जा सकता। तर्क धोखा है, विचार धोखा है, अनुकरणवृत्ति, मौलिकता और सर्जनशीलता को नष्ट करने वाली है। अपनी संवेदशीलता छानबीन, खोज, अर्न्तदृष्टि ही सत्य प्राप्ति में सहायिका होती है।

सत्य घटित हो सकता है जब हम टहलने निकलते हैं और पहाड़ों की ओर देखते हैं और शांत होते हैं और जब हम अपने घर लौट आते हैं तब कुछ चीजे घटित हो चुकी होती हैं।

सत्य की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। तर्क बाद में आता है। प्रत्यक्ष बोध के द्वारा और पत्पश्चात् तर्क के द्वारा हम देखते हैं कि सत्य है। सत्य में कोई कचरा नहीं होता वह निखालित होता है।

सच्ची क्रांति मनुष्य के अंतः में घटित होती है, न कि किसी नयी राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली में। वैचारिक क्रान्ति की असली क्रान्ति है जहाँ मनुष्य स्वयं स्वनिर्मित बन्धन से मुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। मनुष्य के अंतराल में बहुत सारा कचरा जमा हो गया है और इसलिये इस क्षेत्र को झाड़ना जरूरी हो जाता है प्रत्यक्ष-बोध अपने में होता। प्रत्यक्ष बोध के बाद संग्रह करने और बटोरने की आवश्यकता नहीं है।

आज हम उपयोगिता वादी दृष्टि अपनाने के कारण संग्रहवृत्ति वाले हो गये हैं, प्रत्यक्ष बोध के लिए आवश्यक संवेदनशीलता का हममें अभाव हो गया है। हम प्रकृति यदि

नदियों, पर्वतों, पक्षियों आदि के साथ अपने भय वे परे जा सकते हैं, शाब्दिक अथवा सै(ान्तिक रूप से नहीं वरन वास्तव में सत्ताधिकार को आप स्वीकार न करें। सत्ताधिकार की स्वीकृत केवल वह आज्ञापालन है जो और अधिक भय उत्पन्न करता है।

इस अद्भुत रूप से जटिल वस्तु को समझने के लिए जिसे जीवन कहा जाता है और काल में भी है तथा कालातीत भी है, आपके पास एक तरुण, ताजा अबोध मन होना चाहिए। वह मन जो दिन-प्रति-दिन, मास प्रति-मास , अपने अन्दर भय लिये रहता है, एक यान्त्रिक मन है और आप जानते हैं कि यंत्र मानव समस्या का समाधान नहीं कर सकते। यदि आप भय से पीड़ित हैं और यदि बचपन से मृत्युयंत्र भय से ही प्रशिक्षित हुए हैं तो आपका मन अबोध, ताजा एवं तरुण नहीं हो सकता। यही कारण है कि एक अच्छी शिक्षा एक सच्ची शिक्षा, भय को निरस्त करती है।

जे. कृष्णमूर्ति जी प्रायः कहते हैं कि आप भय के बारे में कैसे पता लगायेंगे? क्या आप जनमत से भयभीत हैं— जनमत अर्थात् जो आपके विषय में सोचते हैं? विशेष रूप से जब हम छोटे होते हैं तो हममें से अधिकांश एक से कपड़े पहनना चाहते हैं एक सी बात करना चाहते हैं, एक से दिखाई पड़ना चाहते हैं हम जरा सभी भिन्न नहीं होना चाहते क्योंकि भिन्न होने का अर्थ है अनुरूप न बनना किसी विशेष प्रारूप को संदेह से देखने लगते हैं तो भय होता है। तो उस भय की परीक्षा कीजिए, उसमें जाइये। मैं भयभीत हूँ ऐसे मत कहिये और न उससे भागिये। उसको देखिये, उसका सामना कीजिये, पता लाइयें कि आप क्यों भयभीत हैं। मान लीजिये मैं अपने पड़ोसी, अपनी पत्नी, अपने देवता, अपने देश से भयभीत हूँ तो वह भय क्या है? क्या यह वास्तविकता है अथवा भय केवल विचार में है जो काल में है? मैं एक और सरल उदाहरण दूंगा। हम कभी नकभी को प्राप्त होंगे। मृत्यु हम सबके लिए अनिवार्य है और मृत्यु के बारे में सोचना भय उत्पन्न करता है। एक ऐसी वस्तु के बारे में जिसमें मैं नहीं जानता, भय उत्पन्न करता ही है। परन्तु यदि वह वास्तविकता होती, यदि मृत्यु अभी परन्तु होने वाली होती है और मरने जा रहा होता तो

भय न होता। आप समझे विचार जो काल में है, भय उत्पन्न करता है। परन्तु यदि तुरन्त कुछ करना है तो भय नहीं होता, क्योंकि विचारणा वहाँ सम्भव नहीं है यदि मेरी अगले क्षण मृत्यु हो रही है तो मैं उसका सामना करता हूँ। परन्तु मुझे एक घण्टे का समय दीजिये तो मैं कहने लगता हूँ ' मेरी सम्पत्ति ' मेरे बच्चे , मेरा देश, मैंने अपनी पुस्तक समाप्त नहीं कीं मैं घबड़ा उठता हूँ, भयभीत हो जाता हूँ। इसलिये भय सदा काल में होता है और काल ही विचार है। भय को समाप्त करने के लिये आपको विचार को काल के रूप में सोचना होगा। और विचार को इस समाप्त प्रक्रिया की जाँच करनी होगी। यह कुछ कठिन है।

मैं अपने माता-पिता अपने समाज से, इस बात से कि वे कल अथवा दस दिन बात क्या कहेंगे, भयभीत हूँ। इसकें प्रति मेरी विचारणा भय उत्पन्न करती है। परन्तु भय का सामना करने के लिये मुझे अन्वेषण करना होता है जो कि एक जटिल प्रक्रिया है। क्योंकि उसमें काल की समस्या निहित है काल दो प्रकार के होते है। घड़ी के अनुसार काल अर्थात् अगला मिनट, आज रात्रि, परसों और एक दूसरा भी काल है जो अपने अन्दरे द्वारा विचार द्वारा उत्पन्न किया जाता है, मैं एक कबड़ा आदमी बनूँगा ' मैं एक नौकरी पाऊँगा ' मैं अमेरिका जाऊँगा— तो वह एक मनोवैज्ञानिक भविष्य है जो काल एवं अन्तराल निहित है। घड़ी वाले काल को समझना और विचारणा वाले काल को समझना तथा दोनों के परे जाना वास्तव में भय से मुक्त होना है। आत शिक्षा को संघर्ष एवं भय से मुक्त बनाने के लिए जे. कृष्णमूर्ति के विचारों को अपनाया जा सकता है। मानव के जीवन में मूल्यों का महत्व बहुत अधिक है उसके जीवन का प्रत्येक कार्य न किसी मूल्य से सम्बन्धित होता है। यह मूल्य जीवन के आरम्भिक वर्षों से ही सीखने लगता है तथा धीमे-धीमे अपने अन्दर ग्रहण कर लेता है। मूल्यों की श्रेष्ठता निर्धारित करने में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान है शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में आधुनिक मूल्यों की चेतना और उसके प्रति आचरणगत निष्ठा कैसे विकसित की जाती है? इस प्रश्न पर विचार करने से पहले यह जानना होगा

कि मूल्य का क्या अर्थ? यह प्रश्न अपने आप में मूल्यवान है क्योंकि मूल्य का विचार मानव को स्वतः उस जीवन दृष्टि की ओर ले जाता है जो यह देखती है कि मूल्य वह है जो मानव इच्छा की प्राप्ति करे जो व्यक्ति तथा उसकी जाति के संरक्षण में सहायक हो। 'अन्म में वे कहते हैं कि केवल वही परम रूप से और साध्य रूप से संरक्षण में सहायक हो' अन्त में वे कहते हैं कि केवल वही परम रूप से और साध्य रूप से मूल्यवान है जो आत्माओं के विकास या आत्म साक्षात्कार की ओर ले जाये' इस प्रकार मूल्य वह सत्य है जिसके लिए व्यक्ति जीता है और आवश्यकता पड़ने पर वह संघर्ष करने, दुख सहने तथा मृत्यु को भी स्वीकार करने के लिए तत्पर रहता है।

जे. कृष्णमूर्ति की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि मूल्य परिवर्तनशील समाज की वह धुरी है जिसके कारण समाज का स्थिर रखती है। आप के अनुसार मूल्य ऐसी आचरण संहिता या सदगुण है जिससे व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्यों को प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पति का निर्माण करता है तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। 'इसमें मनुष्य की धारणाएँ, विचार विश्वास मनोवृत्ति, आस्था आदि समाहित है। जे. कृष्णमूर्ति जी जीवन के मूल्यों को स्थूल रूप से दो श्रेणियों में रखते हैं— परिवर्तन मूल्य एवं शाश्वत मूल्य। वैसे सामान्यतः मूल्य कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे आर्थिक मूल्य, स्वास्थ्य संबंधी मूल्य, सामाजिक मूल्य, नैतिक मूल्य सौन्दर्यानुभूति मूल्य, बौद्धिक मूल्य, धार्मिक मूल्य। समाज में प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य होता है कि वह सत्य, अहिंसा आदि शाश्वत मूल्यों का पालन करें। समाज में कल्याणकारी सामंजस्य की स्थिति कायम रखने के उद्देश्य से ही मूल्यों का उद्भव होता है। लेकिन मूलतः उन्ही शाश्वत मूल्यों का वर्तमान में संरक्षण होता है जो सम्पूर्ण मानव समाज के आधार स्तम्भ है। आज के समाज में सर्वमान्य मूल्य समानता अस्पृश्यता निवारण, धर्म निरपेक्षता आदि के अन्तर्गत उन्ही शाश्वत मूल्यों की रक्षा की जा रही जिसके अनुसार प्राणीमात्र को प्रभु की सन्तान के रूप में स्वीकार करते हुए किसी भी प्रकार का कष्ट देना उचित नहीं समझा जाता।

जे. कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि कुछ लोग मूल्यों को व्यक्तिगत रुचि चुनाव का विषय मानते हैं। ये मूल्यों को आन्तरिक मानते हैं और पुस्तकों पाठन विधि आदि सबकों ही व्यक्तिगत रूप से परखते हैं। किन्तु कुछ व्यक्ति मूल्यों को वाध्य तथा अवैयन्तिक मानकर उन पर किसी का प्रभाव नहीं मानते। यदि मूल्य व्यक्तिगत इच्छाओं पर आधारित है तो किसी भी विषय का पठन-पाठन इसी बात पर निर्भर होगा कि अमुक विषय को छात्र मूल्यवान मानते हैं या नहीं। यदि मूल्य अव्यैयन्तिक हैं तो उन पर किसी की खर्च तथा पसन्द का प्रभाव नहीं पड़ेगा

अतः स्पष्ट है कि आधुनिक मूल्य-दृष्टि की प्रतिष्ठा के लिए समग्र शिक्षा प्रक्रिया में बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव है जब पाठ्यक्रम और शिक्षण प्रक्रिया में के चुनाव में न केवल विद्यार्थी की परिस्थिति और रुझान को केन्द्रिय महत्व मिले बल्कि उसमें उसकी सक्रिय सहभागिता एवं प्रतिस्पर्धा की बजाय सहभागिता, सार्थकता और आत्माव लोकन को महत्व देना होगा और यही तभी सम्भव हो सकेगा जबकि ज्ञान की प्रतिष्ठा उपयोगिता के कारण नहीं बल्कि आनन्द का स्रोत होने की वजह से हो। हमें ऐसे तरीकों की खोज करनी होगी जिनसे शिक्षा, शिक्षक-विद्यार्थी के बीच ही नहीं बल्कि विद्यार्थियों के बीच भी एक सहयोगी प्रयास बन सके। जब तक शिक्षा की प्रक्रिया को अनौपचारिकता, खुलेपन, समानता और सहयोग की भावना के आधार पर नहीं विकसित किया जाता तब तक उससे यह उम्मीद करना बेमानी होगी कि वह आधुनिक मूल्य दृष्टि की वास्तविक अर्थों में पोषक हो सकेगी। अतः यह कहा जा सकता है कि उपदेश से उदाहरण श्रेष्ठ है। शिक्षा प्रक्रिया में सबसे बड़ी जिम्मेदारी शिक्षक की होती है शिक्षक जिन मूल्यों को देना चाहता है वह स्वयं उसमें भी व्यक्त होना चाहिए।

आज के वर्तमान युग में मूल्यों का आस हमारी शिक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती है। राष्ट्र तथा समाज का विकास शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव होता है। संसार के कुछ लोगों का तर्क है कि यह सौरयुग है आज हिरोशिमा बम विस्फोट से ज्यादा विस्फोट 'न्यूक्लीयर

बम' ने मनुष्य को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है ऐसे में मूल्यों की शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ गयी है।

जे. कृष्ण मूर्ति का जीवन सत्य, अटूट विश्वास से भरा है वे जीवन में सत्य के मार्ग का अनुसरण करते हुए विश्व में अपने महान विचारों को प्रतिपादित किया है। सत्य की अवधारणा के सम्बंध में यह निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि मनुष्य इस तक किसी संगठन किसी पंथ किसी रूढ़िवादिता पुरोहित या कर्मकाण्डों द्वारा नहीं पहुँच सकता और न किसी दार्शनिक ज्ञान या मनोवैज्ञानिक तकनीकि से ही उसे तो समबंध के द्रुपण द्वारा अपने मानस की विषय वस्तुओं की समझ द्वारा निरीक्षण या अवलोकन द्वारा प्राप्ता किया जा सकता है।

जे. कृष्ण मूर्ति जी कहते हैं परम्परा की सत्ता को स्वतंत्रता का शुत्र मानते हैं जब तक कोई व्यक्ति अपनी मृत परम्पराओं के जीण-शीर्ण सि(ान्त वर्तमान जीवन को गुलाम बनाते हैं। एक परम्परावादी मन सदा अतीत में जीता है। अतः यह निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि द्रष्टा और दृश्य के मध्य भेद नहीं होना चाहिए, उसे कालातीत चुनाव रहित सतर्क वं जीवत अनुभव से परिपूर्ण होना ही सत्य कहा जा सकता है। इसलिये वे परम्पराओं का विरोध करते थे।

जे. कृष्ण मूर्ति जी कहते हैं कि हमारा मन आप्त बचनों एवं पोथियों कि सत्ता से इतना प्रतिब( हो गया है कि हम हर बात के लिए इन्हीं का प्रमाण देते हैं। जो बात इनके अनुकूल नहीं है वह सत्य नहीं हो सकती। ऐसी धारणा वाला व्यक्ति कभी भी सत्ता के निकट नहीं हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा में मौलिकता का पूर्ण समावेश होना चाहिए। तथा सर्जनात्मक दृष्टिकोण जन्म लेंगे। इसी प्रकार के विचार हमारे मनीषियों की भी रही हैं, जिससे जे. कृष्ण मूर्ति जी के विचारों को बल मिलता है। उचित प्रकार की शिक्षा का अर्थ प्रज्ञा को जागृत करना तथ समन्वित जीवन पोषण करना, और केवल ऐसी ही शिक्षा एक नई संस्कृति एवं शांतिमय विश्व की स्थापना कर सकेगी परन्तु इस प्रकार

की नई शिक्षा लाने के लिए हमें एकदम नई जमीन पर नये सिरे से कार्य शुरू करना होगा। शांति पूर्वक एवं सुखी जीवन की सम्भावनाएं तो केवल तभी हो सकती हैं, सृजनशील प्रज्ञा जागृत होती है।

आज आधुनिक शिक्षा हमें विचारहीन हस्तियों में बदल रही है, अपनी व्यक्तिगत जीविका को कर्म, व्यवसाय को खोजने में वह हमारी बहुत कम मदद करती है।

आज आधुनिक शिक्षा हमें विचारहीन हस्तियों में बदल रही है, अपनी व्यक्तिगत जीविका को कम व्यवसाय को खोजने में वह हमारी बहुत कम मदद करती है। हम कुछ परीक्षाएं पास करते हैं और यदि भाग्यशाली हैं तो कोई नौकरी पा लेते हैं जिसका अर्थ है शेष जीवन को एक अंतहीन दिनचर्या में व्यतीत कर देना।

अतः कहा जा सकता है कि बिना प्रज्ञा के हम सुख एवं शांति नहीं प्राप्त कर सकते हैं। आचार्य शंकर गुरु विशिष्ट, व्यास स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद स्वामी रामतीर्थ, एवं स्वामी दयानंद सरस्वती के विचारों से जे. कृष्णमूर्ति के विचारों की मेल खाती है जो इस बात को संकेत देती है कि प्रज्ञा एवं ज्ञान का हमारे व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है।

जे. कृष्ण मूर्ति जी सदा ही तथाकथित धर्मों का विरोध करते रहे हैं। उनका कहना है कि तथा कथित धर्म व्यक्ति के मन को प्रतिबन्धित कर देता है क्योंकि इनमें विचार अंधी भक्ति, अंध विश्वास, रूढ़ियां एवं कर्म काण्ड भरे पड़े हैं। और इनके प्रमुख स्वर्ग एवं नर्क का भय दिखाकर अपने प्रति प्रतिबन्धित कर लेते हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि किसी भी प्रकार के द्वन्द्व में फँसा हुआ मन कभी धार्मिक नहीं हो सकता है, धार्मिक जीवन की शुरुआत तो तभी होती है जब मानस मन बहुत ही गहराई में छिपे मन की द्वन्द्वात्मक स्थिति को समझकर उसके पार चला जाता है। आज हमारा जीवन अत्याधिक खाली-खाली जैसा है। आपके पास भले ही आप अत्यंत चतुर हो, परन्तु जहाँ तक आप अपने हृदय को इस मन की वस्तुओं से भरते रहेंगे वहाँ तक यह निश्चय है कि आपका जीवन रोता ही रहेगा,

कुरूप की रहेगा इसका अर्थ ही नहीं रहेगा। जीवन में सौन्दर्य और अर्थ तो तभी आ सकता है जब हमारा हृदय मन की समस्त वस्तुओं से परे हो गया हो।

जे.कृष्णमूर्ति जी धर्म, अहिंसा एवं मानवता पर विशेष जोर दिये हैं तथा शिक्षा में इसकी भूमिका को महत्व मानते हैं क्योंकि इसी के द्वारा व्यक्ति एक समग्र मानव के रूप में अपनी पहचान कायम रख सकता है। धर्म का अभिप्राय व्यक्ति जो धारण करता है वही उसका धर्म है इस दृष्टि से यह मनुष्य की मूल सत्ता से सम्बन्धित हो जाता है और मानवता, मनुष्यता जैसे प्रत्ययों का बोध कराता है। भारतीय दर्शन में धर्म की जो व्याख्या की गयी है यह संसार के सभी देशों में सभी युगों के लिए अपने वैधता बनाई हुई है धर्म के लक्षणों की व्याख्या करते हुए धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय, निग्रह, ज्ञान विवेक, सत्य, अक्रोध कहा जा सकता है इससे व्यक्ति में मनुष्यता पनपती है जिसका आज पूरे विश्व में आवश्यकता है।

जे. कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि शिक्षा—दर्शन एक ऐसा विषय है जो दर्शन के दृष्टिकोण से शिक्षा के समस्त कार्या, क्रियाओं, समस्याओं आदि का अध्ययन करता है तथा समस्याओं का समसामाजिक समाधान प्रस्तुत करते हुए शिक्षा की प्रक्रिया को उचित दिशा में मोड़ देता है।

जे. कृष्णमूर्ति जी सही शिक्षा की वकालत करते हुए कहते हैं अज्ञानी वह व्यक्ति नहीं है जो विद्वान नहीं है अज्ञानी वह है जो स्वयं अपने को नहीं जानता और ऐसा विद्वान व्यक्ति मूढ़ जो जो समझ अथवा बोध के किताबों पर जानकारियों पर और प्रामाण्य पर निर्भर रहता है। बोध केवल आत्मज्ञान से आता है और अपनी समस्त मानसिक प्रक्रिया के प्रति सजगता से। इस प्रकार शिक्षा का वास्तविक अर्थ स्वयं अपने को समझना है, क्योंकि हममें से प्रत्येक में सम्पूर्ण अस्तित्व समाहित है। जे. कृष्णमूर्ति जी कहते हैं जिसे हम शिक्षा कहते हैं वह केवल पुस्तकों से जानकारियों एवं ज्ञान को संकलित करना है और यह कोई भी साक्षर व्यक्ति कर सकता है। ऐसी शिक्षा स्वयं को अपने से पलायन का एक बहुत



सूक्ष्म तरीका देती है और सभी पलायनों की भाँति वह भी अनिवार्यतः और विचारों के साथ हमारे अपने दोषपूर्ण सम्बंधों का परिणाम है छंद और भाँति। जब तक हम उस सम्बन्ध को नहीं समझते तथा उसे नहीं बदलते तब तक मान विहता अर्थात् तथ्यों का संकलन एवं विभिन्न प्रकार की कार्यकुशलता की उपलब्धि हमें लगातार बढ़ने वालें विनाश और अराजगता की ओर ही ले जायेगी।

सही शिक्षा का अर्थ है कि वह किसी तकनीक के ज्ञान को प्रोत्साहन करने के साथ-साथ कुछ ऐसा काम करें जो कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, यानि वह जीवन की अंखड प्रक्रिया का अनुभव करने में भी मनुष्य की सहायता करे। यही वह अनुभव है जो क्षमता एवं तकनीक को उचित स्थान देगा। यदि किसी व्यक्ति के पास वास्तव में अभिव्यक्ति करने लायक कुछ है तो उसकी अभिव्यक्ति ही अपनी शैली का सृजन कर लेगी, लेकिन आन्तरिक अनुभव के अभाव में बस किसी शैली को सीखना हमें केवल एक छिछलेपन की ओर ले जायेगी।

शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य ऐसे समन्वित व्यक्तियों को पैदा करना है जो जीवन का उसकी समग्रता में समान करे। एक विशेषा की तरह ही आदर्शवादी व्यक्ति को भी समग्रता से कोई मतलब नहीं होता, उसका सरोकार केवल अंश से ही होता है। जब तक व्यक्ति कर्म के किसी आदर्श प्रारूप के पीछे चल रहा है तब तक उसके लिए समन्वित होना संभव नहीं है, और अधिकांश आदर्शवादी अध्यापक प्रेम को उठाकर एक ओर रख देते हैं उसका मन नीरस तथा हृदय कठोर होता है। यदि हमें किसी बच्चे का अध्ययन करना हो तो यह आवश्यक है कि दम सजग सावधान और आत्मा सचेत हो और इसके लिए अपार प्रज्ञा और प्रेम की आवश्यकता है, न कि उसे किसी आदर्श का अनुसरण करने के लिए प्रोत्साहित करने की वर्तमान शैक्षिक तथा सामाजिक संरचना, मुक्ति तथा समन्वय लाने में व्यक्ति की सहायता नहीं करती, और यदि वास्तव में अभिभावक चाहते हैं कि बच्चे का संपूर्ण समन्वित क्षमता का विकास हो, तो उन्हें अपने घर के वातावरण एवं प्रभाव को

बदलना शुरू कर देना चाहिए तथा सही शिक्षकों के साथ लेकर विद्यालयों का निर्माण करना चाहिए।

घर तथा विद्यालय के प्रभाव को ही अपने को फिर से शिक्षित करना जरूरी है।

सही शिक्षा आती है अपने आप में बदलाव से हमें अपने को पुनः शिक्षित करना है कि हम किसी भी कारण से एक-दूसरे की हत्या न करे। वह कारण चाहे कितना ही उचित क्यों न लगता हो, किसी भी विचारधारा के लिए ऐसा न करे, चाहे विश्व के भविष्य के सुख के लिए वह कितना भी आशाप्रद क्यों न प्रतीत होता है। हमें करुणामय होना सीखना होगा, थोड़े में संतुष्ट रहना तथा 'सर्वोच्च' या 'परम' की खोज करना सीखना होगा, क्योंकि तथा मानव जाति की वास्तविक मुक्ति संभव है।

श्री जे.कृष्ण मूर्ति जी की शैक्षिक विचार धारा सामान्य दार्शनिकों एवं शिक्षा विदों की शैक्षिक विचार धाराओं से बहुत भिन्न है। कृष्णमूर्ति जी की शैक्षिक विचारधाराएँ उनकी उन दार्शनिक विचार धाराओं की उत्पाद है, जिन्हें उन्होंने स्वयं जिया है। अपने स्वयं के जीवन-अनुभव के आधार पर ही उन्होंने अपने दार्शनिक मतों का प्रतिपादन किया है और इन्हीं दार्शनिक मतों की निष्पत्ति है। उनकी शैक्षिक विचार धाराएँ उनका दर्शन एवं उससे उत्पन्न होने वाला उनका शिक्षा दर्शन न तो कोरी कल्पना है न ही किसी सिद्धान्तों की व्याख्या ही। आपका मानना है कि विचारों के अनुरूप यदि बच्चों को शिक्षित किया जाये तो निश्चित रूप से एक नूतन संस्कृति तथा नूतन विश्व का निर्माण हो सकता है। इनकी शिक्षाओं के आधार पर शिक्षित किए गये नूतन समाज में बाह्य एवं अभ्यंतर की समस्त मानवीय समस्याओं का सहजता से निदान किया जा सकता है।

जे. कृष्ण मूर्ति जी का चिंतन देश काल परिस्थिति एवं सांस्कृतिक विषमताओं की सीमा से परे जाकर शाश्वत जीवन को समझने में मानवता की सहायता करता है। यही कारण है कि उनकी शिक्षा एवं शिक्षा के उद्देश्यों में भी उसी शाश्वत की झलक मिलती

है। शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को जे. कृष्णमूर्ति जी ने निम्न रूपों में व्यवस्थित किया है—स्वयं के अस्तित्व के सम्बन्ध में बालकों की जिज्ञासा के सम्बंध में वास्तविक जीवन के मूल्यों की खोज के सम्बन्ध में समग्र मानव के निर्माण के सम्बन्ध में विवेकपूर्ण विद्रोह की क्षमता जागृत करने के सम्बन्ध में, जीवन के रहस्यों के सम्बन्ध में भय का अंत के सम्बन्ध में सत्य की खोज के सम्बन्ध में ध्यान के वास्तविक स्वरूप को समझने के सम्बन्ध में वास्तविक धार्मिक जीवन के सृजन के सम्बन्ध में, जीवन जीने की कला सिखाने के सम्बन्ध में वास्तविक चरित्र और अखण्ड जीवन का बोध कराने के सम्बन्ध में स्वतंत्रता, प्रेम एवं अच्छाई का प्रस्फुटन करने के सम्बन्ध में एवं स्वयं को आलोकित करने में सहायता करने के सम्बन्ध में

जे. कृष्णमूर्ति जी शिक्षा के कार्य को स्पष्ट करते हुए शिक्षा व्यक्ति एवं समाज दोनों की मेरुदण्ड होती है। यदि बालक को उचित ढंग से शिक्षित किया जाये तों उनसे निर्मित समाज में होने वाली बुराईयाँ समाप्त हो जाती है यदि समाज के प्रत्येक बालक की मेधा का उचित ढंग से विकास किया जाये तो उससे एक नवीन समाज की रचना हो सकती है। जे. कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि विश्व में फैली वर्तमान शिक्षा प(तियों से एक नूतन विश्व की रचना नहीं हो सकती। विश्व में फैली नाना प्रकार की बुराइयों की जड़ में वर्तमान शिक्षा प(ति उत्तरदायी है। इसका मूल कारण यह है कि वर्तमान शिक्षा महत्वाकांक्षा एवं प्रतिस्पर्धा पर आधारित है जिसके कारण समाज में हर प्रकार का शोषण हो रहा है और इसी से सारे विश्व में हत्या, व्यभिचार, हिंसा तथा अन्य नाना प्रकार की बुराईयाँ पनप रही है। जब तक हमारा समाज इस प्रकार से संस्कारित करने वाली शिक्षा से मुक्त नहीं होते, तब तक नवीन समाज की सरंचना असंभव है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के वास्तविक अर्थों में प्रेम करें तथा सुख एवं शांति का जीवन व्यतीत करने में एक दूसरे की सहायता करें।

अतः कही जाती है कि सही शिक्षा गुरु ही से प्रारम्भ होती है लेकिन कृष्ण मूर्ति जी का मानना है कि यह सत्य नहीं है वे गुरु का सदा विरोध करते हैं वे कहते गुरु या शिक्षक अन्य व सभी जो बालक को शिक्षित करते हैं अपने सि(ान्तों, विचारों एवं निष्कर्षों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बालकों के मन पर आरोपित करते हैं जिसके कारण बालक विशेष मानसिकता वाली स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं।

जे. कृष्णमूर्ति जी शिक्षा के विकास में शिक्षालय का योगदान एवं स्वरूप पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि यही शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति की स्वतंत्रता से है। यह स्वतंत्रता ही समिष्ट के साथ, अनेक व्यक्तियों के साथ, सच्चे सहयोग को जन्म देती है। परन्तु यह स्वतंत्रता आत्म-विस्तार तथा अपनी सफलता के लिए किए गए प्रयत्नों का परिणाम नहीं है। स्वतंत्रता आत्मबोध के जरिए आती है, वह तब आती है जब मन उन बाधाओं से ऊपर एवं परे उठ जाता है। जिनकों उसने अपनी सुरक्षा की लालसा से अपने लिए निर्मित किया है।

शिक्षालय को छोटा रखना चाहिए। किसी भी कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या सीमित होना जरूरी है ताकि शिक्षक प्रत्येक शिक्षार्थी पर पूरा ध्यान दे सके। संख्या अधिक होने पर उसके लिए यह करना संभव नहीं होगा और उस हाल में अनुशासन बनाए रखने के लिए दंड और पुरस्कार का रास्ता अपनाने की नौबत आ जाएगी।

पूरे विद्यालय हर समय व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा प्रज्ञा के भाव से परिपूर्ण रहना चाहिए। इसे न केवल संयोग पर छोड़ देने से काम नहीं चलेगा और न खाली समय में स्वतंत्रता तथा प्रज्ञा जैसे शब्दों का लापरवाही से उल्लेख करने का ही कोई अर्थ होगा।

जे. कृष्ण मूर्ति जी अनुशासन के बारे में कहते हैं कि यदि आप नहीं सी उम्र से ही सही रूप में शिक्षित किए जाए तब आपमें एक ऐसी अवस्था का आगमन होगा जिसमें न हो वाह्य विसंगति और न तो आंतरिक। तब अनुशासन या जबरदस्ती की आवश्यकता ही

नहीं रह जायेगी। क्योंकि तब आप कोई कवि अपूर्णता, स्वतंत्रता और समग्रता से कर रहे होंगे। अनुशासन का आगमन तो तभी होता है जब हममें विसंगतियाँ हों नेता, सरकार, संगठित धर्म यह चाहते हैं कि आप एक ही प्रकार के विचार करे क्योंकि आप पक्के साम्यवादी, पक्के कैथोलिक या और कुछ पक्के बन सके, तब आप समस्या के रूप में नहीं रह जायेगे, तब आप केवल श्रुति करेंगे और यंत्रवत् कार्य करेंगे। तब विसंगति का प्रश्न ही नहीं उठेगा क्योंकि आप किसी का अनुसरण कर रहे, लेकिन सभी प्रकार का अनुकरण विनाशकारी है, क्योंकि यह यांत्रिक है। यह केवल अंधानुकरण है जिसमें सृजनात्मक मुक्ति नहीं है। अतः समग्रता के लिए किसी प्रकार के अनुशासन की आवश्यकता नहीं।

जे. कृष्णमूर्ति जी अनुशासन की जगह व्यवस्था शब्द का प्रयोग करते हैं वे कहते हैं कि मैं अनुशासन शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहता, क्योंकि आप अनुशासन का अर्थ सिर्फ बाहरी बदाव तक सिमट कर रह गया है जबकि व्यवस्था तब तक नहीं हो सकती जब तक भीतरी समूची प्रक्रिया लक्ष्य प्राप्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ न बनाएँ।

अतः मानव अपनी वर्तमान सभ्यता में जीवन को इतने अधिक भागों में बाँट दिया है कि शिक्षा का इससे अधिक और कोई अर्थ नहीं रह गया है उससे केवल हम कोई तकनीक या व्यवसाय सीख ले। हममें से अधिकांश व्यक्ति ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं त्यों-त्यों भयभीत एवं परतंत्र होते चले जाते हैं और जहाँ भय है वहाँ न तो मेधा है न मो स्वतंत्रता न प्रेम ही विश्व में व्याप्त संकट का यही मूल कारण है अतः इससे मुक्ति पाने के लिए स्वयं से मुक्ति एवं परतन्त्रता से मुक्ति आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा की जो व्यवस्था है उसमें परिवर्तन करना समीचीन लगता है। आज शिक्षा केवल आजीवीका होने के कारण व्यक्ति में संचय की प्रवृत्ति पनप गयी, आज एक व्यक्ति भूखा है तथा दूसरे के पास इतना खाद्यान्न है कि खा नहीं पा रहा है ऐसी स्थिति में खाद्यान्न है कि खा नहीं पा रहा है ऐसी स्थिति में अराजकता, भ्रष्टाचार, लोलुपता एवं संग्रही की प्रवृत्ति का बोलबाला हो

चुका है जो सारे मान्यताओं को ध्वस्त कर दिया है उपरोक्त परिस्थिति में जे. कृष्ण मूर्ति के विचारों की शिक्षा में अनुप्रयोग समय की मांग है

वर्तमान समय में शिक्षण का स्वरूप बदल गया है कि जिसमें सहानुभूति एवं संवेदना, प्रेम को स्थान नहीं मिल पाने के कारण ठीक ढंग से सीखने के बाजय भय की दृष्टि से सीखने को मजबूर हो रहा है। इस व्यवस्था को समाप्त कर स्वतंत्र वातावरण पैदा करने में इस शोध की उपयोगिता हो सकती है।

शिक्षा को केवल आजीविका मात्र मत समझे, बल्कि जीवन की तैयारी माने। शिक्षा में धर्म की स्थापना को लेकर अनेक शिक्षा विदों ने विरोध किया है उसे कैसे लागू किया जाये? आज शिक्षा में जो होना चाहिए वही गौण हो गया है ऐसी परिस्थिति में जो भ्रष्टाचार व्याप्त है नैसर्गिक, विकास, को महत्व कम हो गया है जे. कृष्ण मूर्ति जी नैसर्गिक विकास पर बल दिये है। इन सबसे निवृत्त होने में यह शोध प्रबंध अपनी महती भूमिका निर्वहन कर सकता है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन एवं परिवर्तन करने में भी सहायता प्रदान कर सकता है, इस शोध के द्वारा विज्ञान तथा अध्यात्मिक के समन्वय के भी मदद मिल सकता है।

देश की विधायी संस्थाओं में जो अवमूल्यन एवं हास विरोध करने का ढंग संघर्ष एवं राजनीतिक प्रतिस्पर्धाओं के वर्तमान स्वरूप देश के विकास के किलए शुभ संकेत नहीं है ऐसी दशा में राजनीतिक सत्ता के सम्बन्ध में जे. कृष्णमूर्ति के विचारों को ध्यान में रखा जा सकता है जिससे उपरोक्त संकट दूर करने में मदद हो सकती है।

### **भावी अध्ययन हेतु सुझाव**

विश्व प्रसि( दार्शनिकों में बहुप्रतिभा के धनी, चिन्तक व विचारक जे. कृष्णमूर्ति जी का अग्रणी स्थान है। वे सत्य, अहिंसा, एवं आध्यात्मिकता के प्रवर्तन थे। परन्तु चिंता की बात यह है कि अपने ही देश में उनके दार्शनिक विचारों के महत्व का उचित आकलन

नहीं हो पा रहा है। इसका एक कारण शायद यह हो सकता है कि उनकी बातें लोगों को अव्यवहारिक लगती हो, जो आध्यात्मिका से ओत-प्रोत है। उनके विचारों, चिन्तकों एवं कार्यों को किसी एक शोध ग्रंथ में समाहित करना एक शोधकर्ता के असम्भव नहीं तो कठिन कार्य अवश्य है। अतः भविष्य में इस महान व्यक्तित्व के धनी महापुरुष पर निम्न रूपों में शोध किया जा सकता है।

1. जे. कृष्णमूर्ति जी का जीवन दर्शन का अन्य शिक्षा विदों के विचारों के साथ-साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
2. जे. कृष्णमूर्ति जी का जीवन दर्शन उच्चकोटि एवं मानवता से परिपूर्ण था वे ज्ञानी एवं एक आध्यात्मिक महापुरुष भी थे, ऐसी दशा में उनके धर्म सम्बन्धी विचार को भारतीय महापुरुषों जैसे रविन्द्रनाथ टैगोर, विवेकानंद, शंकराचार्य महात्मा बु( के धार्मिक विचारों के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
3. जे. कृष्णमूर्ति जी के विचारों का स्थूल स्वरूप उनके द्वारा स्थापित शिक्षा केन्द्रों को केस स्टडी बनाकर शोध किया जा सकता है।
4. जे. कृष्णमूर्ति जी के शिक्षा-दर्शन भारत ही नहीं पूरे विश्व में अपनायी गयी है अतः भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिकों के विचारकों में जे.कृष्णमूर्ति के शिक्षा-दर्शन पर शोध किया जा सकता है।
5. जे. कृष्णमूर्ति जी द्वारा भारत में एवं विदेशों में स्थापित विद्यालयों का तुलनात्मक अध्ययन शिक्षा के उद्देश्य, कार्य, शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम, विद्यालय एवं शिक्षक की गतिविधि आदि के संदर्भ में अध्ययन किया जा सकता है।